International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 24-06-2023, Accepted: 09-07-2023, Published: 25-07-2023
Volume 9, Issue 4, 2023, Page No. 32-35

ओमप्रकाश वाल्मीकि कहानियों में चित्रित आत्मसंघर्ष का स्वरूप ('सलाम' कहानी–संग्रह के परिप्रेक्ष्य में)

डॉ. सदानन्द वर्मा
शोध अध्येता, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली, भारत

सारांश
ओमप्रकाश वाल्मीकि दलित साहित्य के प्रमुख एवं अग्रणीय रचनाकार हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से दलित समाज और उसमें घटित होने वाली परिस्थितियों का विश्लेषण बड़े ही बारीक़ दृष्टिकोण से किया है। वे इस समाज में रोजमर्रा के जीवन में घटित होने वाली घटनाओं के न केवल द्रष्टा ही रहे बल्कि भोक्ता भी थे। यही कारण है कि उनकी रचनाओं में उनके जीवन की उन सभी विषंगतियों, जिजीविषाओं एवं आतंरिक समस्याओं का पूंज दिखाई पड़ता है जिसको उन्होंने जिया और उसके अच्छे–बुरे परिणामों का अनुभव भी किया। उनकी लेखनी में आने वाली प्रखरता, आक्रोश एवं प्रतिरोध का स्वरूप इस बात का द्योतक है जो उनकी आतंरिक पीड़ा और उससे मुक्ति की चाह के रूप में दिखाई पड़ती है। उनकी रचनाएँ जहाँ एक ओर सामाजिक पीड़ा, गरीबी, बेरोजगारी, आपसी कलह, अंतर्द्वंद्व, ऊँच–नीच व छुआ–छूत की पीड़ा को रेखांकित करती है तो वहीं दूसरी ओर उसमें आत्मसंघर्ष, अंतर्विरोध, जिजीविषा, समानता, बंधुत्व व भाई–चारे की भावना का निरूपण भी देखने को मिलता है। निश्चित तौर पर लेखक ने अपनी रचनाओं के माध्यम से जिस दलित समाज, उसकी पीड़ा एवं संवेदना को प्रस्तुत करने की कोशिश की है वह उस समाज की यथार्थ स्थिति को द्रष्टव्य करता है। यह सत्य है कि ओमप्रकाश वाल्मीकि को इसकी प्रेरणा फुले–अम्बेडकरी चिन्तन से प्राप्त हुई है जिसकी मुखरता हम अम्बेडकरवादी सिद्धांतों एवं विचारों में पाते हैं। लेखक ने भी इसी विचारधारा को आधार बनाकर अपनी रचनाओं में उन चेतानाप्रद पात्रों का सृजन किया है जो एक ओर तो अपनी अमानवीय दशा एवं सामाजिक पीड़ा के दंश को झेलते हुए नजर आते हैं; वहीं दूसरी ओर वे सामाजिक कुरीतियों, रुढ़िवादी व ब्राह्मणवादी सोच को तोड़ते हुए एक ऐसे समाज की नीव तैयार करने की कोशिश करते हैं; जहाँ प्रत्येक व्यक्ति की पहचान 'मनुष्य' के रूप में हो सके तथा उसके साथ मनुष्यता का व्यवहार किया जा सके; सबके लिए समान न्याय की बात की जाय तथा सबको अपने अधिकार स्वेच्छा से प्राप्त हो सके। जो किसी भी सुदृढ़ और व्यवस्थित लोकतंत्र के मानको में शामिल होती है।

मूल शब्दः अस्मिता की खोज, न्यायिक पक्षधरता, वर्ण–व्यवस्था, ब्राह्मणवादी सोच, अम्बेडकरवादी चिंतन, समानता, स्वन्त्रता, बंधुत्व

समकालीन हिन्दी साहित्य चिंतन के केंद्र में कुछ प्रमुख अस्मितामूलक विमर्शों की चर्चा बड़ी तन्मयता के साथ की जा रहा है। इन विमर्शों में स्त्री विमर्श, आदिवासी विमर्श तथा दलित विमर्श प्रमुख हैं। दलित विमर्श इन सभी विमर्शों में से एक महत्वपूर्ण विमर्श के रूप में सामने उभर कर आया है। इस विमर्श का स्पष्ट स्वरूप बीसवीं सदी के उतरार्द्ध में मुखर रूप से विद्रोह व नकार के रुप में दिखाई पड़ता है। इसने साहित्य की समाजिकी को नये पाठ के सहारे पढ़े जाने के लिए एक विमर्श खड़ा किया है। जिसमें पौराणिकता, परंपरा, विरासत, कथा–विषय तथा नायक–नायिका आदि का नवीन दृष्टियों से अवलोकन व अन्वेषण किया जा सके। यह न केवल सैद्धान्तिक परम्परावादी साहित्य और सौंदर्यशास्त्र को पुनः नए सिरे से परिभाषित करने की वकालत करती है, बल्कि मानव को केंद्र में रखते हुए मानवतावादी साहित्य को सर्वोपरि सिद्ध करने पर भी ज़ोर देती है। दलित साहित्य आज के समय के लिए एक प्रमुख मांग है, जिसके विमर्श में अब तक के सांस्कृतिक मनोभूमि के छद्म, शासनायुक्त सत्ता के सांस्कृतिक गठजोड़ और समाज के यथार्थ रूप की झाँकी देखने को मिल जाती है।

जीवन, संघर्ष का ही दूसरा नाम है। संघर्ष या द्वंद से तात्पर्य व्यक्ति या समूहों के बीच मतभेद, टकराव, स्पर्द्धा, द्वेष, प्रतिरोध, विरोध आदि से है। वस्तुतः संघर्ष जीवन की वह कसौटी है, जो हमें अंदर से मजबूत कर जीवन की राह को आसान बनाती है। पाश्चात्य आलोचक माओ ने संघर्ष की परिभाषा देते हुए लिखा है कि "मनुष्य वस्तुपरक यथार्थता का गुलाम नहीं है। उसकी चेतना यदि विकास के वस्तुपरक नियमो के अनुकूल है तो वह अपनी व्यक्ति परक क्रियाशीलता के सहारे क्रांति के मार्ग में आने वाली सभी कठिनाइयों पर विजय प्राप्त कर सकता है और समाज को आगे ले जाने वाले सभी आवश्यक परिस्थितियों का निर्माण कर सकता है।"[1] इस प्रकार से कहा जा सकता है कि संघर्ष प्रतिकुलता परिस्थितियों के पाश्चात प्रारम्भ होता है। स्वार्थ परता बढ़ने से व्यक्ति दूसरे को हानि पहुचाने लगता है। इसके विरोद्ध में दूसरा व्यक्ति अपनी रक्षा करने का प्रयत्न करता है और उसे हानि पहुँचाने से रोकता है जिससे मनोवैज्ञानिक स्तर पर संघर्ष की रूपरेखा बनती है। तथा उचित अवसर आने पर संघर्ष का वास्तविक स्वरूप दिखाई पड़ने लगता है। 'आत्मसंघर्ष' अपने जीवन के उन संघर्षों को द्रष्टव्य करता है जहाँ व्यक्ति प्रकृति के साथ, परिस्थितियों के साथ, समाज के साथ, स्वयं के साथ तथा अन्याय और पाखंड के साथ जूझता हुआ दिखाई पड़ता है लेकिन बात जब दलितों कि हो तब यह स्थिति और भी भयावह हो जाती है। उनका संघर्ष इस पृथ्वी पर जन्म लेने के दिन से ही चालू हो जाता है तथा जीवन पर्यंत चलते हुए मृत्यु तक उनका पीछा करता रहता है। वे लाख तरीकों से इस कलंक को मिटाने का प्रयास क्यों न कर लें लेकिन उनका आत्मसंघर्ष ज्यों का त्यों बना रहता है, तभी तो वह इन संघर्षों के चक्रव्यूह में फस कर इसकी जकड़न को भाग्य की देन समझता रहता है।

भारत में वर्ण–व्यवस्था का स्वरूप बहुत ही गहरा है। भारतीय समाज में वर्ण व्यवस्था की शुरुआत प्राचीन समय से चली आ रही है। भारतीय शास्त्रों और वेदों में इसका प्रारंभिक समाज में समानता व एकता बनाए रखने की दृष्टि से हुआ है। भगवत गीता में श्रीकृष्ण अर्जुन से स्पष्ट करते हुए कहते हैं, "चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्म विभागशः"[2] अर्थात् मैंने चारों वर्णों की रचना गुण और कर्म के आधार पर किया है। पुनः वे आगे कहते हैं कि "ब्राह्मण क्षत्रियांवेशां शूद्राणां च परन्तप, कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभाव प्रभवैर्भुणैः"[3] अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र के कर्तव्य उनके स्वभावजन्य गुणों के आधार पर विभाजित किए गए हैं। अर्थात व्यक्ति का ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र कहलाना गुण एवं कर्म

के अधीन है। व्यक्ति कुल विशेष में जन्म लेने से उस वर्ण का सदस्य नहीं बन जाता। व्यक्ति की सामाजिक स्थिति का निर्धारण उसकी योग्यता एवं निष्पादन पर आधारित है, जन्म पर नहीं यह गीता की स्वीकृति है। वेद–शास्त्रों का ही मानना है कि शुद्र अन्य तीनों वर्णों की सेवा इसलिए करता है क्योंकि वह पिछले जन्म में पाप किया था। यह पाप–पुण्य की साजिश समाज में बड़े ही सफाई से बिछाई गई है जिसका प्रभाव अनवरत चला आ रहा है, लेकिन उसकी इच्छाएँ और पेट की भूख को ही न मिटा पाने की चाह ने उसे कभी भी इस विषय पर सोचने के लिए विवश नहीं किया। और वह मुक बनकर इसका शिकार होता गया। भारतीय सामाज की इस विडंबना को देखते हुए ही मुनरो ने कहा था कि "पूर्व ने पश्चिम को बहुत कुछ दिया इसलिए पश्चिम उसे जगदगुरु मानता रहा। यह प्रशंसा बहुत उत्कृष्ट और अच्छी लगती है, लेकिन हमने अपने ही घर में रहने वाले दलित वर्ग को कभी नहीं देखा।" निःसंदेह मुनरो का यह कथन हमारे सामाजिक कुकृत्यों की तरफ इशारा करती है जो न केवल अपने वेद–शास्त्रों के अहम में पड़कर स्वयं को पूरे देश का जगदगुः घोषित करने में अपनी प्रशंसा समझता है जबकी स्वयं के घर में पक्षपात की रणनीति से खुद को ही नहीं बचा पता।

किसी भी राष्ट्र में समाज, परिवार और वहाँ की व्यवस्था, मनुष्य जीवन के विकास के लिए उत्तरदायी होती है। मनुष्य का अस्तित्व इन सबके केंद्र में स्थित होता है। यदि मनुष्य ही नहीं रहेगा तब इसका अस्तित्व किस काम का। शायद यही समझ कर प्राचीन समय में हमारे वेद–शास्त्रों के रचयिताओं ने ऐसे नियम बनायें जिसमें उन्होंने चार वर्णों का सृजन किया लेकिन उनमें से एक वर्ण का स्थान ऐसे जगह पर निश्चित किया जहां वह अपने समकक्ष इन तीनों वर्णों की सेवा का कार्य करता रहे। और उनके संरक्षण में रहते हुए अपने आप को जीवित रखे जिससे कि वह इनका उपयोग आजीवन करता रहे। इनसे अपने घर के गंदे काम (बिष्ठा साफ करवाने) करवाने में इनका भरपूर सहयोग ले सकें। और सेवा के बदले उन्हें प्रसाद के रूप में अपना जूठा देकर उनके प्रति सहानुभूति व्यक्त करता रहे। हिंदी साहित्यिक लेखन पर चिंतन करने के पश्चात यह जानकर और भी अधिक दुःख होता है जब इन चार वर्णों में रहने वाला शूद्र भले ही अपने तीनों वर्णों की सेवा करने की दृष्टि से ही इनके समकक्ष रहता हो निश्चित तौर पर उनके दुःख–सुख में सहभागी भी बनता रहा है। उनके आत्म सम्मान की रक्षा भी करता रहा है। फिर भी इतिहास के किसी भी पन्ने पर उसकी चर्चा तक नहीं की जाती। इतिहास इस संबंध में मूक बना हुआ दिखाई पड़ता है। क्या जीवन भर सेवा करने का यही परिणाम मिला है, कि बस ये शोषित होने के लिए ही पैदा होते हैं। समाज में इनके लिए ऐसा कोई भी स्थान नहीं जो अन्य तीनों वर्णों के लिए है। समाज के इन्हीं परिस्थितियों को देखते हुए बाबा साहब ने लिखा है कि "भारत में दलितों कि स्थिति गुलामों से बदतर है। गुलाम तो गुलामी के साथ संघर्ष करके मुक्ति प्राप्त कर सकता है, परंतु एक दलित जन्मना जाति की बेड़ियों से कभी मुक्त नहीं हुआ।"[4] यह कथन जितना यथार्थ है उतना जी कष्टप्रद भी।

ओमप्रकाश दलित समाज समाज से ताल्लुक रखने के साथ–साथ उस समाज के एक–एक पहलुओं, विषंगतियों एवं दैनदिनी स्थितियों से परिचित हैं; यही कारण है कि उनकी रचनाओं में दलित समाज का संघर्ष, दीन–हीन परिस्थितियों का निरूपण, मानसिक प्रताड़नाओं एवं सामाजिक छद्म व पारंपरिक शोषण का यथार्थ रूप देखने को मिलता है। उनके कहानी संग्रह 'सलाम' में कुल 14 कहानियाँ संकलित हैं जो दलित जीवन की संवेदनशीलता और अनुभवों से उपजी कहानियाँ हैं। ये कहानियाँ हमें ऐसे अनुभवों से साक्षात्कार कराती हैं, जहाँ हजारों साल की आतंरिक पीड़ा किसी अंधेरे घर के एक कोने में दुबकी पड़ी सी दिखाई पड़ती है। वाल्मीकि जी अपनी इन कहानियों के माध्यम से इन्हीं आतंरिक पीड़ाओं को द्रष्टव्य कर समाज के समक्ष रखने की कोशिश की है। तथा उनके द्वारा रचित उन बाह्य आडम्बरों, छलावों एवं सामाजिक षडयंत्रकारी साजिशों का पर्दाफाश करते हुए उसके नीव को ही हिला देने की कोशिश की है। लेखक के द्वारा रचित सभी पात्र इसी विचार को धारण करते हुए दिखाई पड़ते हैं। पात्रों के अंतर्गत यही प्रखरता दलित समुदाय तथा दलित विमर्श को सार्थक एवं गुणात्मक बनाता है।

वस्तुतः दलित समाज के अस्तित्व की पीड़ा इतनी भयावह और अमानवीय है कि उसे अपने अस्तित्व पर ही प्रश्नचिह्न खड़ दिखाई पड़ता है। वह मनुष्य की योनि में जन्म लेने के बावजूद भी सामाजिक रूप से पशुवत जीवन जीने के लिए निरंतर मजबूर किया जाता रहा है। चाहे वह पढ़ लिखकर किसी सम्मानित स्थान पर ही क्यों न पहुँच जाए। फिर भी वह समाज के उस छद्म रूपी जाल से अपने आप को मुक्त नहीं कर पाता। वह समाज के लिए भंगी, चमार, मेस्तर और चूहड़ा के रूप में ही पहचाना जाता है। इसका यथार्थ स्वरूप 'सलाम' में भी देखा जा सकता है। 'सलाम' कहानी का हरीश (दलित) और कमल उपाध्याय दोनों खास दोस्त हैं। उनके बीच जात–पात का कोई मसला नहीं दिखाई पड़ता, लेकिन एक दिन जब कमल, हरीश को अपने घर लेकर जाता है तब कमल की मां हरीश से पूछती है कि हरीश तुम्हारे पिताजी क्या करते हैं? पर जब हरीश द्वारा उन्हें यह पता चलता है, कि उसके पिता नगर निगम में सफाई कामगार हैं। अर्थात् दलित हैं। वैसे ही वह अपने बेटे कमल के गाल पर थप्पड़ मारते हुए कहती हैं, "पता नहीं कहां–कहां से इन कंजड़ों को पकड़कर घर ले आता है। खबरदार जो आगे से किसी हरामी को दुबारा यहाँ लाया...।"[5] कमल के विचार और उसकी माँ के विचार में शिक्षा और रुढ़िवादी सोच से निर्मित विचार का स्वरूप दिखाई पड़ता है। कमल चूँकि पढ़ा–लिखा और जागरुक सवर्ण पात्र है; इसीलिए वह जाति–पाति के छद्म और उससे उपजने वाले बंधनों को उतना नहीं समझ पाता; लेकिन उसकी माँ इससे परे ब्राह्मणवादी संस्कार एवं रुढ़िवादी सोच से निर्मित पात्र हैं इसीलिए वे इस छद्म को न केवल जानती हैं बल्कि उसके बने रहने में ही अपना हित समझती हैं। यही कारण है कि वे जैसे ही हरीश की जाति से वाकिफ होती हैं उन्हें उनकी जातिगत श्रेष्ठता का बोध हो आता है और इसी बोध का आभास कराने हेतु वह अपने बेटे कमल को थप्पड़ मारती हैं जिससे हरीश तथा उस जैसे दलित युवक फिर कभी किसी सवर्ण लडके से दोस्ती न कर सके। यही नहीं हरीश के चले जाने पर वह अपने पुरे घर को गंगाजल से धोती हैं ताकि कमल को यह आभास हो सके की ये कितने घृणित, अपवित्र और गंदे लोग हैं। वह अपने बेटे कमल को समझते हुए कहती भी हैं कि बेटे, "इनके संस्कार गलत हैं, ये छोटे लोग हैं। इनके साथ बैठने से बुरे विचार मन में पैदा होते हैं..."[6] अर्थात् दलित हरीश का कमल के घर में प्रवेश कर जाना एक अपराध है, क्योंकि वह एक दलित है, अछूत है, अशुद्ध है तथा संस्कारविहीन है वेशक वह पढ़ा–लिखा कमल का सहपाठी है तो क्या हुआ। इसे एक मनोवैज्ञानिक साजिस भी कहा जा सकता है जिसके माध्यम से सवर्ण प्रवृति के लोगों द्वारा समाज में इसे पीढ़ी–दर–पीढ़ी जीवंत रखा जाता रहा है। गाँव के इन्हीं सामाजिक परिस्थितियों को देखते हुए बाबा साहब ने गांव को भारतीय गणतंत्र की अवधारणा का शत्रु माना था। उनका विचार था कि हिंदुओं की ब्राह्मणवादी और पूंजीवादी व्यवस्था का जन्म भारतीय गांव में होता है। इस सम्बन्ध में वे लिखते हैं कि "भारतीय गांव हिंदू व्यवस्था के कारखाने हैं। उनमें ब्राह्मणवाद, सामंतवाद और पूंजीवाद की साक्षात अवस्थाएं देखी जा सकती हैं। उनमें स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के लिए कोई स्थान नहीं। भारतीय गांव ब्राह्मणों के लिए स्वर्ग हो सकता है परंतु दलितों के लिए तो वह नरक ही है।"[7] वास्तव में यह परंपरावादी व्यवस्था हमारे अंदर इस तरह

घर कर जाती है कि हम उससे निकल ही नहीं पाते। और निरंतर उसी लके आवरण में पिसते जाते हैं। और इसे ही हम अपनी दैनदिनी का हिस्सा बनाकर जीते रहते हैं।

सामाजिक विडम्बना और स्थिति का मूल्यांकन ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'बैल की खाल' में बखूबी देखने को मिलता है; जहाँ एक ओर बेबसी भी दिखाई पड़ती है और मजबूरी भी। पंडित जी के बैल को मरे हुए सुबह से दोपहर हो गया था, लेकिन वह मृत बैल अभी–भी सड़क के बीचो–बीच कुएं के पास पड़ा हुआ था। उसे रास्ते से हटाना बहुत जरूरी था। लेकिन उसे वहाँ से हटाना तो दूर उसके पास जाने की हिम्मत किसी को नहीं होती थी। इस कार्य को सिर्फ काले और भूरे ही कर सकते थे। इसीलिए पंडित जी ने उनकी तलाश सुबह से ही करवा रक्खी थी। जैसे–जैसे सूर्य ढल रहा था पं. बिरिज मोहन जी की त्योंरिया चढ़ती जा रही थी। जैसे ही उन्हें काले और भूरे आते हुए दिखाई पड़े। सबसे पहले उन्होंने उनपर अपना गुस्सा निकालते हुए चिल्ला कर कहा, "कहाँ मर गए थे भोसड़ी के... तड़के से ढूँढ–ढूँढ के गोड्डे टूट गए हैं। और इबी आ रहे हो महाराजा की तरियों ....इस बैल को कौन उठावेगा... तुम्हारा बाप।"[8] निश्चित तौर पर लेखक ने यहाँ काले और भूरे पात्र के माध्यम से दलित व्यक्ति की सामाजिक दशा और उनकी सामाजिक पहचान को रेखांकित करने की कोशिश की है। जहाँ पूरे समाज को इस बात की खबर है कि काले और भूरे के न रहने से गाँव का मलबा, कचरा अथवा गन्दगी को साफ करने वाला भी कोई नहीं है फिर भी उनके परिश्रम, उनकी सोच और जिजीविषा को इस तरीके से प्रदर्शित किया जाता है मानो वे साधारण मनुष्य न होकर पशुओं की योनी से जन्में हों। यह कहानी समाज के उस द्वन्द्वात्मक परिस्थिति से हमें परिचित करती है जिसमें काले और भूरे जैसे पात्रों की अनुपस्थिति व उनके महत्व का पता पूरे गाँव को है, लेकिन इसके बदले उन्हें क्या मिलता है सवर्ण समाज की प्रताड़णा व उनके द्वारा होने वाला अभद्र व्यवहार। यह व्यवहार ही उन्हें अपने स्वयं की पहचान करने की ओर उद्दत करता है तभी तो काले नामक पात्र अपने अस्तित्व पर विचार करते हुए कहता है–

'भूरे हमें यूं काम छोड़ देना चाहिए।'

'क्यूँ...जो हमने इस काम को छोड़ दिया तो करेगा कौण। क्या मरे हुए ढ़ोर–डंगर गाँव में ही पड़े सड़ते रहेंगें...'

'सड़ने दे...इस सड़ांध में हम गले–गले तक डूब जाते हैं। किसे परवाह है...कोई अपने धोरे (पास) बी ना बैठावे हैं।'[9]

यहाँ काले और भूरे के एक–एक कथन सत्य को उद्घाटित करते हैं। वास्तव में उन्हें इन कामों को करने से भला क्या लाभ है। केवल चंद रुपये जो उन्हें इन मरे हुए पशुओं के चमड़े को बाजार में बेचकर मिल जाते हैं। जिनसे वह अपने परिवार का भरण–पोषण करते हैं; नहीं, उन्हें इस बात की जानकारी हो चुकी है कि यह कार्य अब उनके जीवन को ही नहीं बल्कि उनकी पहचान के लिए घातक है। और भला हो भी क्यों नहीं जिस कार्य को करने के बाद भी समाज में उनके लिए कोई इज्जत नहीं बचती, उनके सदैव नीच, अभद्र और घृणित भाव से ही देखा जाता है, जिनके स्पर्श मात्र से पवित्र स्थान भी अशुद्ध हो जाता है उन्हें भला इस तरह की व्यवस्था और समाज से क्या संबंध। इससे तो कहीं अच्छा इससे स्वयं को मुक्त कर देने में ही है। किसी को इस बात की परवाह ही नहीं होती कि वे भी मनुष्य हैं और एक आम मनुष्य की तरह जीना चाहते हैं। यही कारण है कि वे ऐसे समाज से स्वयं को मुक्त कर लेने में ही अपनी भलाई समझते हैं जहाँ उन्हें न कोई इज्जत मिलती है और न ही कोई भाई–चारे जैसा संबंध।

'सलाम' कहानी संग्रह में ही संकलित कहानी 'कहां जाए सतीश' के माध्यम से लेखक ने यह दिखने की कोशिश करते हैं कि भारतीय समाज में जाति की अवधारणा कितना कुछ मनुष्य की अस्मिता को बनाने और उसकी स्थिति को निश्चित करने में महती भूमिका निभाती है। जब तक इस समाज को किसी व्यक्ति के जाति से परिचय नहीं हुआ रहता; तब तक वह उसे आत्मीय, सहृदयी व स्नेहपूर्ण भाव से अपनाता है। लेकिन जैसे ही उसे, उसकी जाति का बोध होता है तब वह न ही आत्मीय ही रह पाता है और न ही सहृदयी ही। बल्कि वहाँ उसकी स्थिति जातिगत श्रेष्ठता और उच्चता को दिखाने की हो जाती है। उसकी सामाजिक सद्भाव की स्थिति व्यक्तिगत स्थिति और सम्मान की हो उठती है। वह उस समय अपने को सर्वश्रेष्ठ, उच्च कुल का व्यक्ति घोषित करने की चेष्टा करना स्वाभाविक समझता है। यही कारण है कि वह सामने वाले व्यक्ति को तुच्छ, निरीह और कमजोर समझाते हुए उसके साथ व्यवहार करता हुआ नजर आता है। और यदि सामने वाला व्यक्ति दलित समाज का ठहरा तब तो उसके लिए वह अशुद्ध, घृणित, नीच व गन्दा सा ही प्रतीत होता है। क्षण भर के इस परिचय से मानों उसके सारे जीवन पर कलंकित का चिह्न अंकित कर दिया जाता है। पता नहीं उसके मानसिक स्तर पर वह कौन–सी स्थिति घर कर जाती है जिससे वह, उसको छूना तो दूर, उसके बोलने–चालने, उठने–बैठने, पहनने–ओढ़ने आदि प्रवृतियों से घृणा का भाव झलकने लगता है। कुछ इसी तरह की स्थितियों का चित्रण इस कहानी के माध्यम से लेखक ने द्रष्टव्य करने की कोशिश की है। इस कहानी में मि. पंत और मिसेज पंत को जब तक यह जानकारी नहीं होती कि सतीश एक दलित परिवार का लड़का है तब तक वह उनके घर बड़े ही आराम से रहता है। तथा उसे अपने ही परिवार का सदस्य मानते हुए उसकी खूब खातेदारी की जाती है, लेकिन जैसे ही उन्हें यह पता चलता है कि सतीश एक भंगी का लड़का है वैसे ही उनके होश उड़ जाते हैं। उनका शारीर किसी अथाह सागर में डूबने लगता है; मानों सारी मान्यताएँ क्षण भर में ही धराशायी हो गयी हों। वे दोनों स्वयं को एक अजीब–से चक्रवात में फँसा हुआ अनुभव करने लगते हैं। उनके चेहरे के सामने यह प्रश्न बार–बार चक्कर लगता रहता है, क्या सतीश एक भंगी होकर हमारे घर में रहता है? उनकी चेतना मानो लुप्त सी हो जाती हैं। उनके लिए अब सतीश वह प्यारा सतीश नहीं रह जाता बल्कि अब वह अछूत, घृणित, अपमानित और नीच जाति के रूप में दिखाई पड़ने लगता है। उसके शरीर का स्पर्श तो दूर, कपड़ों के स्पर्श हो जाने पर मिसेज पंत को ऐसा प्रतीत होता है मानो उनके शरीर में बिजली सी दौड़ गई हो। यही कारण है कि छत पर सुखा रहे सतीश के कपड़े को वह एक डंडे का सहारे कूड़े–करकट की तरह फेंक देती हैं। कुछ समय पहले का प्रिय, अपने पुत्र के समान प्रतीत होने वाला सतीश अब उनके लिए किसी गन्दी नाली के कीड़े के समान प्रतीत होता हुआ नज़र आता है।

भारतीय समाज में केवल दलित पुरुषों की ही नहीं बल्कि दलित स्त्रियों की भी स्थिति दयनीय दिखाई पड़ती है। लेकिन दलित समाज में शिक्षा और जागरूकता की पहल के चलते आज उनमें भी आत्मसंघर्ष के प्रति सचेतता की स्थिति देखने को मिल रही है। एक तरफ जहाँ उन्हें स्त्री होने के कारण पुरुषों से असहनीय आतंरिक पीड़ा झेलना पड़ा है वहीं दूसरी ओर दलित स्त्री होना तो उनके गुलामी को और सुदृढ़ बनाता रहा है। लेकिन यह सत्य है कि आज वह पुरुषों की गुलामी और उनके शोषण को सहने की बजाय संघर्ष और मेहनत करते हुए स्वयं को एक प्रतिष्ठित श्रेणी में अंकित करना ज्यादा उपयोगी समझती हैं। यही कारण है कि आज वे देश के सर्वोच्च पदों यथा; सरकारी नौकरियों, प्राइवेट नौकरियों व राजनीतिक स्थानों पर न केवल बढ–चढकर भाग ले रहीं हैं बल्कि अधिकाधिक रूप में अपनी उपस्थिति भी दर्ज करवा रही हैं। आज दलित वर्ग की स्त्रियों में चेतना का प्रसार होने से ही वह अपने वर्ग के गंदे और घिनौने कार्यों को छोड़कर अच्छे कार्यों को करने के लिए आगे बढ़ रही है। इनके अन्दर आयी

जागरूकता की ही देन है कि वे अपने समाज को एक नई दिशा देने में अपनी महती भूमिका का निर्वहन कर पा रही हैं। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हमें 'अम्मा' नामक कहानी मे देखने को भी मिल जाता है। 'अम्मा' कहानी की दलित स्त्री पात्र 'अम्मा' अपने बच्चों को न केवल अपने सामाजिक पेशागत कार्यों को करने से रोकती हैं बल्कि उन्हें पढ़ा–लिखाकर एक अच्छे व प्रतिष्ठित व्यक्ति बनाने की चाह रखती हैं। चूँकि वह पढ़ी–लिखी तो नहीं होती लेकिन सामाजिक पहल और स्थितियों ने उन्हें यह समझने में खलल नहीं डालती की सम्मान और अधिकार पाने के लिए शिक्षा और नौकरी बहुत बड़ा स्थान रखता है। यही कारण है कि वह इस गन्दगी से स्वयं को तो नहीं निकाल पातीं लेकिन अपने बच्चों को इससे बचाने की पूरी कोशिश करती हैं। लेकिन जब उनका छोटा बच्चा उनके विचारों से अलग जाता हुआ दिखाई पड़ता है तब वह उसे समझाते हुए कहती हैं, "मैं कितने दफे तैन्ने समझा–समझा के हार गई... तैन्ने नचणिया नहीं बनना है। अपनी चच्चा की तरियों सड़कों पे बैंड बाज़्जे वालों की गैल पें–पें करता घूमेगा। उसकी हालत देक्खी है...फेफड़ों में जान न है उसके। सांस ढोकनी की तरियों चले है... और तू उसकी लैन पे चल रहा है...पढ़–लिख के आदमी बणजा...किसी दफ्तर में किलरक (क्लार्क) नहीं तो चपरासी ही लग जाएगा। इस गंदगी से तो छूट जाएगा। जहाँ न दो टेम की रोट्टी ढंग से मिले है, न इज्जत। गले–गले तक कर्ज में डूबे हैं। तेरे बाप कू तंख्वाह बाद में मिले, सरदार प्रीतम सिंह आके पहले खड़ा हो जावे। घर–बाहर कहीं भी दो घड़ी का चौन ना है। रोज–रोज की किटकिट...बस यों ही ज़िंदगानी है कि कोई धीरे भी न बैठावे। जैसे छूत की बीमारी लग जावेगी ।"[10] इस पंक्ति की एक–एक वाक्य दलित समाज की वास्तविक स्थिति को रेखांकित करती हुई प्रतीत हो रही है। यह सत्य है कि समाज में स्त्रियों की भूमिका उस समाज के संचालक उत्पन्न करने उसको दिशा देने में अग्रणीय होती है। यहीं 'अम्मा' नामक दलित स्त्री पात्र इसी बात का द्योतक है। लेखक को इस बात की गूढ़ जानकारी है कि यदि दलित समाज को जागरुक और चेतनाप्रद बनाना है तो सबसे पहले स्त्रियों का सम्मान और उन्हें जागरुक करने की जरुरत है। वे दलित स्त्रियों के सम्बन्ध में खुद ही लिखते हैं, "दलित संघर्ष में दलित स्त्री का और भी ज्यादा महत्व है क्योंकि समाज में रची–बसी विषमता मूलक समाज संरचना को तोड़ने में दलित स्त्री की भूमिका अहम रही है, जबकि पितृसत्तात्मक मानसिकता ने उन्हें घर की देहरी में कैद करने, उसकी स्वतंत्रता को खंडित करने, उसकी अस्मिता पर चोट करने का कोई भी अवसर नहीं छोड़ा है।"[11] वाल्मीकि जी की चिंता निश्चित रूप से दलित समाज में स्त्रियों के यथार्थ स्वरूप से परिचित कराता है। क्योंकि चेतना की वास्तविक प्रतीति स्त्रियों के अंदर आयी प्रगति से ही देखी जा सकती है। वह उस जागरूकता से न केवल अपने समाज को मार्गदर्शित करती हैं बल्कि समय पड़ने पर एक तटस्थ दीवार के रूप में खड़ी दिखाई भी पड़ती हैं।

समग्रतः यह कहा जा सकता है कि कथाकार ओमप्रकाश वाल्मीकि के कहानी संग्रह 'सलाम' में संकलित सभी कहानियाँ दलित जीवन की स्थितियों को यथार्थ रूप में प्रकट तो करती ही हैं। साथ ही साथ उस समाज के संघर्षपूर्ण जीवन की जिजीविषा को भी रेखांकित करती हुई दिखाई पड़ती हैं। दलित समाज अपने जीवन के प्रमुख साधनों से आज भी वंचित हैं। वह आज भी उसी प्रकार झोपड़ियों में निवास करता हैं जैसे विगत वर्षों से उनके पूर्वज करते रहें हैं। वह आज भी अपनी नियति और गरीबी को भाग्य की देन समझते हैं। शिक्षा अभी भी उनसे कोसो दूर है। वे आज भी वही गंदे कार्य करने के लिए विवश है जिससे समाज उन्हें निम्न श्रेणी में स्थान देता है। आखिर इन सब का जिम्मेदार कौन है? आज देश को स्वतंत्र हुए 60–70 वर्ष हो चुके हैं। क्या लोकतंत्र ने उन्हें कुछ भी नहीं दिया?, क्या उनका जीवन ऐसे ही अनवरत बना रहेगा?, क्या उनकी कोई अपनी स्वतन्त्रता ही नहीं? यह प्रश्न निश्चित तौर पर हमें चिंतन करने पर मजबूर करती हैं। और एक व्यवस्थित उत्तर की प्रतीक्षा करती है। क्योंकि लोकतंत्र ने समाज के सभी वर्गो को अपने–अपने विचार रखने की आजादी दी है। सत्ता में, समाज में, धर्म में, अर्थ में हर जगह निश्चित तौर पर बहुत से प्रश्न इस विषय से संबंधित उठ भी रहे हैं चाहे वह राजनीति के माध्यम से हों या साहित्य के माध्यम से, लेकिन उसकी गतिशीलता को देखते हुए संदेह उत्पन्न होता है। निश्चित तौर पर लेखक ने भी 'सलाम' कहानी के मध्ययम से इन्हीं प्रश्नों को उठाने का प्रयास किया है। उनकी चिंता समाज के अंदर होने वाले शोषण व छल पर कटाक्ष के रूप में दिखाई पड़ती है। फिर भी वर्तमान स्थितियों का आकलन करते हुए यह कहा जा सकता है कि वाल्मीकि जी की कहानियाँ दलित समाज के जीवन में संघर्षों के विविध आयामों को उद्घाटित तो करती ही है बल्कि चेतना की एक नई किरण प्रज्ज्वलित कर उनके लिए एक नए मार्ग भी प्रसस्त करती हैं जिनसे इन चुनौतियों से निजात पाया जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ–

1. वर्गसंघर्ष की आलोचनात्मक समीक्षा, माओ।
2. भगवदगीता –4/13।
3. भगवदगीता –18/41।
4. संधू, कुमार, डॉ. जोगिंदर, दलित चेतना के संदर्भ में कथाकार ओमप्रकाश वाल्मीकि, साहित्य संस्थान, लोनी बॉर्डर, गाजियाबाद, (उ. प्र.), संस्करण– 2016, पृष्ठ सं. –87
5. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, सलाम, राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, सं.– 2014, पृष्ठ सं. –14
6. वही, पृष्ठ सं. –15
7. अंबेडकर, बाबा साहब डॉ. भीमराव, सम्पूर्ण वांगमय (भाग–13), सामाजिक न्यास और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, संस्करण– 2016
8. सलाम, ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, सं.– 2014, पृष्ठ सं. –33
9. वही, पृष्ठ सं. –35
10. वही, पृष्ठ सं. –118
11. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, मुख्यधारा और दलित साहित्य, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण– 2014, पृष्ठ सं. –117